छत्तीसगढ़ी भाषा एवं साहित्य में युगीन चेतना का विकास

संपादक
प्रो आर के लहरे

सह–संपादक
प्रो. टी. एस. पैंकरा

GEEL INFIX PUBLISHING SERVICES

Publishing-in-support-of,

GEEL INFIX
PUBLISHING SERVICES

Kotra Road, Rajeev Nagar, Opposite Rambagh
Raigarh, Chhattisgarh - 496001

www.geelinfix.in

© Copyright, Author

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual, photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its writer.

ISBN: 9788194591702

Price: ₹ 250.00

The opinions/contents expressed in this book are solely of the author and do not represent the opinions/standings/ thoughts of Geel Infix Publishing Services.

Printed in India

विषय–सूची

क्र.		पृ. क्र.
1.	'छत्तीसगढ़ी कहानियों में अभिव्यक्त लोक चेतना' –डॉ. स्वामीराम बंजारे 'सरल'	11
2.	छत्तीसगढ़ी में प्रचलित गीत–संगीत, नृत्य वनाटयकला –डॉ. रामायण प्रसाद टण्डन	18
3.	छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य में लोकगीत – जानकी चौधरी	22
4.	छत्तीसगढ़िया करमा – डॉ. श्रीमती रश्मि कोका	
5.	छत्तीसगढ़ी के विविध बोलियाँ –श्रीमती इमिलियाना लकडा	32
6.	छत्तीसगढ़ लोक नाट्य परम्परा –डॉ. महेश कुमार शुक्ल –अतुल कुमार मिश्र –विपिन कुमार तिर्की	35
7.	छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य और लोक जीवन प्रो.चरणदास बर्मन	36
8.	लाला जगदलपुरी की छत्तीसगढ़ी कविताओं में जीवन सौन्दर्य – डॉ. राजेश कुमार सेठिया	48
9.	लोक साहित्य : महत्व और बाजारीकरण –डॉ. एच. आर आगर * –लक्षेष्वरी **	50
10.	छत्तीसगढ में प्रचलित गीत–संगीत, नृत्य व नाट्य–कला – श्रीमती माग्रेट कुजूर	51
11.	छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति वर्तमान परिवेश –प्रो. बी के भगत	59

12.	छत्तीसगढ़ी बोली व साहित्य के विविध आयाम –डॉ. मंजुला पाण्डेय	65
13.	छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोकगीत संगीत, नृत्य व नाट्यकला – संगीता रंगारी	69
14.	छत्तीसगढ़ में प्रचलित गीत, संगीत, नृत्य व नाट्य कला –राजेन्द्र प्रसाद नागवंशी	74
15.	छत्तीसगढ़ की राम मय भूमि –डॉ. सरिता पाण्डेय	76
16.	छत्तीसगढ़ के विविध बोलियाँ डॉ. बी.आर. महिपालस डॉ. सुनीता राठौर सहा.	79
17.	छ.ग. साहित्य में अभिव्यक्त लोक संस्कृति श्रीमति पुष्पांजली दासे	82
18.	छत्तीसगढ़ में प्रचलित मेला, तीज–त्यौहार एवं उत्सव का स्वरूप –डॉ. सुनीता राठौर	90
19.	छत्तीसगढ़ की लोक नाट्य परंपरा *डॉ. महेश कुमार शुक्ल, **अतुल कुमार मिश्र, *** विपिन तिर्की	93
20.	छत्तीसगढ़ी साहित्य में अभिव्यक्त लोकसंस्कृति डॉ. पी.डी. महंत* बेला महंत**	94
21.	छत्तीसगढ़ी लोकगीतः एक परिचय –राकेश कुमार कौशल	96
22.	छ.ग. में प्रचलित त्यौहार व मेला का स्वरूप –डॉ0 रमेश टण्डन	102
23.	छत्तीसगढ़ी और आंग्ल भाषा का तुलनात्मक अनुशीलन प्रो. राज कुमार लहरे* प्रो. हेमकुमारी पटेल**	107
24.	छत्तीसगढ़ में प्रचलित मेला, तीज–त्यौहार एवं उत्सव का स्वरूप –धर्मेन्द्र कुमार पाटनवार	113

आदिवासी साहित्य में निहित कविता के विविध आयाम

– प्रो. लवन सिंह कंवर, श्रीमती लता कंवर

प्रस्तावना–साहित्य मानव जाति की अनमोल कृति है,जिससे मानव समाज में निहित अनेक घटनाओं का वर्णन साहित्य के रूप में हमें मिलता है। साहित्य–विकास की परंपरा पर दृष्टिपात् करने पर प्राचीन,मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य का दर्षन मिलता है। वहीं आदिवासी समाज का इतिहास बहुत पुराना है। वे आदि निवासी माने गए हैं। जिनका उल्लेख धार्मिक ग्रंथों,पौराणिक ग्रंथों,रामायण,समाजशास्त्रों आदि में भी मिलता है। 'सामाजिक विज्ञान और हिंदी विष्वकोष' में भी डॉ.वीरबाला भावसागर ने लिखा है–''धार्मिक और पौराणिक ग्रंथों में आदिवासियों को निषाद,दास,पौंड्र,आभीर और तक्षक आदि नामों से संबोधित किया है। इन्हें आदिवासी संबोधित करने का प्रमुख कारण उनमें प्रचलित आदिम संस्कृति और प्राचीन मान्यताएँ हैं। आर्य जब भारत में आकर बसे तो उन्होंने यहॉ के आदि निवासियों को अनार्य कहना षुरू किया। प्रसिद्व समाजषास्त्री जी.एस.धुग्रे ने अपनी किताब'दी एबोरजिनल सोकाल्ड देयर फ्यूचर' में इन्हें कथित 'आदिवासी'अथवा'पिछड़े हुए हिन्दू' नाम दिया। आदिवासियों के संदर्भ में प्रसिद्व विद्वान डॉ.विनायक तुकाराम लिखते हैं–''वर्तमान समय में आदिवासी षब्द का प्रयोग विषिष्ट पर्यावरण में रहने वाले,विषिष्ट जीवन पद्वति ओर परंपराओं से सजे और सदियों से पहाड़ों का जीवनयापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखने वाले मानव–समूह को वनवासी,भूमिपुत्र,आदिपुत्र,जंगल के राजा आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है।'' वहीं जेकब्स तथा स्टर्न मानते हैं कि–''एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का एक ऐसा समूह,जिसकी समान भूमि हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक–दूसरे के साथ हो,जनजाति कहलाता है।''

साहित्य का पुनरावलोकन–जब हम समाज के किसी वर्ग को केन्द्र में रखकर उससे संबंधित साहित्य की बात करते हैं तो प्रथम दृष्टया यह है कि साहित्य साहित्य होता हे और उसका घटकीय वर्गीकरण करना गलत होगा। इस दृष्टि से नारीवादी साहित्य,दलित या आदिवासी चेतना साहित्य या इससे आगे अन्य पिछड़ा वर्ग या अल्पसंख्यकों के साहित्य की आवाज को यह कहकर नकारने की चेष्टा की जाती है कि इस कदर का बॅटवारा साहित्यिक विखंडनवाद के सिवा कुछ नहीं। इस परिप्रेक्ष्य में अब सवाल यह उठता है कि क्या साहित्य की परम्परा में जो कुछ अब तक लिपिबद्व स्तर पर (हिन्दी,अंग्रेजी या संविधान में अनुसूचीबद्व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की हो) सृजित किया जाता रहा है ,उसमें समग्र राष्ट्र समाज की अभिव्यक्ति किस हद तक हुई है अर्थात क्या समाज की सभी श्रेणियों को पर्याप्त और आधिकारिक स्थान दिया जाता रहा है?
संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं में रचे गये लिपिबद्व साहित्य में आदिवासी जीवन की अभिव्यक्ति के दायरे में रहकर जब इस विषय पर चर्चा की जाती है तो यह प्रतीत होता है कि आदिवासी साहित्य बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है।

आदिवासी जीवन पर केन्द्रित साहित्य–भारत बहुभाषिक देष है। यहॉ भिन्न–भिन्न प्रकार के लोग रहते हैं,उनकी अपनी–अपनी संस्कृतियॉ एवं रीतिरिवाज हैं। साहित्य की दृष्टि से देखा जाये तो, वैदिक साहित्य में संकेत मिलते हैं।"वैदिक साहित्य में भी इस तरह के लोगों का उल्लेख मिलता है जो देखने में तनिक अलग से थे और विचित्र देवी–देवताओं की पूजा करते थे।" आदिवासी जीवन को लेकर जब कविता की बात की जाती है तो उनकी मौखिक परम्परा ही सामने आती है। यह गेय परम्परा रही है।
आधुनिक या समकालीन कविता की दृष्टि से ऑचलिक भाषा में अवष्य कविताऍ लिखी गई हैं। लेकिन हिन्दी में आदिवासी कविता अभी ष्षुरूआती दौर में चल रही है। इस दौर में कई आदिवासी और गैर–आदिवासी कवियों द्वारा आदिवासियों के जीवन पर कविताऍ लिखी जा रही हैं। विषेष रूप में आदिवासियों का संघर्ष,

अस्मिता, संकट, घुसपैठ, नायक बिरसा, आदिवासी स्त्री,संस्कृति,भाषा आदि को लेकर कविताएँ लिखने की कोषिष की जा रही है। इस दृष्टि से निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा, चन्द्रकान्त देवताले, रोज केरकेट्टा, हरिषंकर अग्रवाल ,ग्रेस कुजुर, अनुज लुगुन, मंजू ज्योत्सना, सरिता सिंह बड़ाईक,ऋतुराज,लीलाधर मंडलोई,वाहरू सोनवणे आदि कवियों ने अपने लेखन के केन्द्र में आदिवासी समाज को रखा है।

"ये आदिवासी स्वर की कविताएँ केवल आदिवासी जीवन के अनुभव में सीमित रचनाएँ नहीं है,प्रत्युत अन्ततः सम्पूर्ण मानवीय सरोकारों की अभिव्यक्ति है।"लेकिन आज आदिवासी पर लिखा जा रहा साहित्य अपने इतिहास का नेतृत्व कर पा रहा है या नहीं,यह सोचने की बात है। "आदिवासी साहित्य में यदि प्रकृति,सामूहिक जीवनषैली, जंगल,जमीन से लगाव,आदिवासी विद्रोह,श्षौर्य, विस्थापन,पलायन,और दमन–श्षोषण का दंष और अपने इतिहास पर गर्व वर्णित न हो,तो वह अधूरा ही माना जाएगा। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनकी अपनी एक अलग संस्कृति,रीति–रिवाज एवं बोली है,जो अन्य जातियों से अलग है।"जिन मानव वैज्ञानिकों ने इन आदिवासियों के बीच कार्य किया है उनका विचार है कि ये आदिवासी अपनी सामाजिक व्यवस्था में अन्य जातियों से अलग हैं।"

साहित्य की अन्य विधा की तरह आज कविता में भी आदिवासी जीवन पर कविताएँ लिखी जा रही है। कुछ लोग आदिवासी और दलित को एक ही समझते हैं। लेकिन तत्वों को लेकर इनमें भिन्नता है। आदिवासियों की अपनी एक अलग संस्कृति है,जो मानवीय सभ्यता में अपनी अलग पहचान बनाती है। प्राचीन काल से ही आदिवासी समाज प्रकृति के सानिध्य में अपना जीवनयापन करता आया है। आदिवासियों के लिए प्रकृति ही देवता है। इसलिए वे 'जंगल के दावेदार' कहे जाते हैं। लेकिन आज परिस्थिति बदल गयी है। जॅगलों का ह्रास करके बड़ी–बडी इमारतें बनायी जा रही हैं। सड़कों,बॉधों एवं शासन की परियोजनाओं के नाम पर उनका पुनर्वास किया जा रहा है। विस्थापन के नाम पर आदिवासियों का शोषण किया जा रहा है।

21वीं सदी के श्रेष्ठ आदिवासी लेखकों में हरिराम मीणा का नाम लिया जा सकता है। उनके अब तक तीन काव्य संग्रह–'हाँ चाँद मेरा है','रोया नहीं था यक्ष' तथा 'सुबह के इन्तजार में' प्रकाषित हो चुके हैं।' हाँ चाँद मेरा है' में हरिराम मीणा ने मेवाड के अँचल में रहने वाली 'भीलणी' जनजाति के लोगों की संवेदनाओं को महत्व दिया है वहीं 'रोया नहीं था यक्ष'लम्बी कविता की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रबन्धात्मक संग्रह है। इसमें कवि ने सामन्तवादी व्यवस्था के विरूद्व आवाज उठायी है। कुबेर के माध्यम से सामान्य जनता के ष्षोषण को उजागर किया है।'सुबह के इंतजार में' काव्य संग्रह में कवि ने आदिवासी और उनके आस–पास के परिवेष का चित्रण किया हैं। कवि ने आदिवासियों के जननायक के रूप में बिरसा मुण्डा की भी पहचान करायी है। इसलिए इस संग्रह की अनेक कविताएँ आदिवासी के विद्रोह को प्रकट करती है। कई कविताएँ नर्मदा नदी पर बनाये जा रहे सरदार सरोवर बांध पर भी भाष्य करती हैं। मेधा पाटकर ने 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' का नारा लगाकर आदिवासियों के विस्थापन एवं पुनर्वास की समस्याओं को उजागर किया है। हरिराम मीणा लिखते हैं–

"ग्लोबल विकास के पैकेज पर
प्रहार करने का स्वांग करते
प्रकृति–पुत्रों की आवाज निकालते
नेपथ्य में सुरक्षित षैतानों का समूह
विकास–घुसपैठ, आदिम चेतना–आतंक
सब गड्डमड्ड करती यात्रा
बाल्को,हिंदाल्को,नेतरहाट
नन्दीग्राम,सिंगरूर,लललगढ़
राजधानी एक्सप्रेस से ग्रीन हंट–वाया दंतेवाड।"

समकालीन कविता में आदिवासी स्त्रियों पर निर्मला पुतुल ने अधिक कविता लिखी हैं। अब तक उनके तीन काव्य संग्रह'नगाड़े की तरह बजते षब्द', 'अपने घर की तलाष में', 'फूटेगा एक नया विद्रोह' प्रकाषित हो चुके हैं। ये तीनों ही कविता–संग्रह आदिवासी

के जीवन पर प्रकाष डालते हैं। उनमें पुरूषवादी सोच की चिन्ता और नारी की अस्मिता आदि पर प्रकाष डाला गया है। दूसरी ओर वाहरू सोनवणे का 'पहाड़ हिलने लगा है' काव्य संग्रह में आदिवासी के दर्द,उनकी पीड़ा,समस्याएँ,त्रासदियाँ आदि बेचैनी के साथ उजागर हुई हैं। किन्तु इस बेचैनी में एक संयम का स्वर का है जो कवि को कोध में आकर चिल्लाने के लिए मना करता है। केदारनाथ प्रसाद मीणा लिखते हैं,"वाहरू सोनवणे का स्वर निर्मला पुतुल से थोड़ा भिन्न है। वाहरू सोनवणे की 'स्टेज' नाम की कविता दलितों के षोषकों की नीति का पर्दाफाष करती है। कवि कहते हैं–

"हम स्टेज पर गये ही नहीं और हमें बुलाया भी नहीं
उँगली के इषारे से हमारी जगह हमें दिखाई गयी
हम वहीं बैठे हमें षाबाषी मिली
और वे स्टेज पर खड़े हो हमारा दुख
हमें ही बताते रहे हमारा दुख
अपना ही रहा कभी उनका हुआ ही नहीं।"

यह कविता उन लोगों पर तीखा प्रहार करती है जो दलित एवं आदिवासी की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हैं लेकिन उनके अस्तित्व को जगह नहीं छोड़ते। यह आज के समाज की विडम्बना है। कवि केवल कवि ही नहीं बल्कि समाज का अध्येता भी होता है। इसलिए समकालीन आदिवासी कवियों ने अपने समाज के भोगे हुए यथार्थ को परखा है।

आज की कविता में प्रकृति और प्रेम की जगह आम आदमी की षंका,श्षोक, विद्रोह,श्षोषण,असमंजस,आन्दोलन आदि को महत्व दिया जा रहा है। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी सभ्यता,अस्मिता,आदिवासी स्त्री की व्यथा,श्षोषण आदि का महत्व रहा है। दलित लेखकों के समान निर्मला पुतुल पर आम्बेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है। इसलिए उनकी कविता में दलित और गैर दलित अर्थात् आदिवासी समाज का चित्रण आया हैं। प्रो. ऋषभदेव शमा ने लिखा है,"आम्बेडकरवादी कविता के उन्नायकों में निर्मला पुतुल का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने केवल दलित जीवन को ही नहीं बल्कि दलितों में भी दलित अर्थात्

आदिवासियों और स्त्रियों के जीवन संघर्ष को अपनी कविता का विषय बनाया है।" निर्मला पुतुल दलितों एवं आदिवासियों की स्थिति पर प्रकाश डालती है।

"और उन जगमगाती रौशनियों से दूर
शहर के आखिरी छोर पर झुग्गी–झोंपड़ियाँ हैं
जहाँ टिमटिमाते हुए कुछ दिए जल रहे हैं
दिए की लौ लगातार लड़ रही है अँधेरों से
और अँधेरा है कि भागने का नाम नहीं ले रहा है।
अँधेरों से घिरी झोंपड़ियों में बैठा आदमी
देख रहा है दिए अँधेरे से लड़ते।"

निर्मला पुतुल की कविता में पुरूष की सोच की विडम्बना है। दूसरी ओर अपनी जमीन को तलाषती हुई बेचैन स्त्री है। 'आदिवासी लड़कियों के बारे में' कविता में कवयित्री ने आदिवासी लड़कियों के उल्लासमय जीवन को इस प्रकार व्यक्त किया है–

"ऊपर से काली
भीतर से अपने चमकते दाँतों
की तरह षान्त धवल होती हैं वे
वे जब खेतों में
फसलों को रोपती काटती हुई
गाती है गीत
भूल जाती है जिन्दगी के दर्द
ऐसा कहा गया है।"

निर्मला पुतुल पुरूष के शरीर की अपेक्षा स्त्री के अलग मन को समझना चाहती हैं वह कहती हैं–

"तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के मन की गाँठ खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खोखला इतिहास।"

वहीं "क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए" कविता में कवयित्री पुरूषवादी सोच को नकारते हुए कहती है,

"क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए.....?
एक तकिया कि कहीं से थका–मॉदा आया और सिर टिका दिया।"

आदिवासी इलाकों में बाहरी तत्वों की घुसपैठ सबसे बड़ी समस्या रही है। यहीं से आदिवासी जीवन की पवित्रता में प्रदूषण षुरू होता है और अन्त में आदिवासी अस्तित्व का संकट भी। इस दौर में जमीन से विस्थापन की समस्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। बॉध परियोजना,राष्ट्रीय उच्च मार्ग,रेल्वे लाईन,खनन–व्यवसाय,औधोगीकरण,अभ्यारण्य एवं अन्य कारणों से आदिवासियों का अनिवार्य विस्थापन होता है। एक तरह से उन्हें अपनी पारम्परिक जमीन व परिवेष से खदेड़ने को विवष किया जाता है। इसकी वजह से उनकी जीविका के आधार भी समाप्त होते जा रहे हैं। अतः इस दौर में आदिवासी के जीवन की स्थिति विकट बनती जा रही है। दूसरी ओर जंगलों का ह्रास किया जा रहा है।

कवि सूर्यभानु गुप्त की 'पेड़ अब भी आदिवासी है' कविता आदिवासी और प्रकृति के गहरे सम्बन्ध को दर्षाती है। साथ ही कवि समय के अनुरूप आदिवासी के जीवन में बदलाव चाहता है। वे सदियों से पीड़ित आदिवासी समाज की स्थिति को प्रकट करते हैं। कवि कहते हैं कि–

"हो गयी सदियॉ मगर फिर भी
है अजूबा पेड़ अब भी आदिवासी है
पत्तियॉ अब तक पहनते हैं,
मुड हो,नंगे ही रहते हैं
घुट रहा है जिन्दगी का दम
पेड़ इतने हो गये हैं कम
खो चुकी अपनी हरापन जो
उन अभागी जर्द नस्लों की उदासी है
पेड़ अब भी आदिवासी है।"

आदिवासी कवियों ने ष्षोषकों की साजिषों के खिलाफ आवाज उठायी है। अब वे ओढ़ी हुई सभ्यता को नहीं चाहते। इसलिए

उन्होंने बिरसा मुण्डा को फिर से धरती पर आने की कामना की है। एक आदिवासी कवि ने कहा है–

''.....उठो कि अपने अँधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिषों के खिलाफ
अब उन्हें पता लग गया है।
आज ना घने बीहड़ हैं
ना तू है
है केवल बीहड़ों में फैलता असन्तोष।
सच बताऊँ अब हमें जल्दी है
नहीं चाहते अब हम ओढ़ी हुई सभ्यता
.....बिरसा तुम्हें कहीं से भी आना होगा।''

कवि ऋतुराज की कविता में हाषिये पर पड़े हुए साधारण आदिवासी का संसार है। 'जंगल के दावेदार' कविता में आदिवासियों की जंगलों के प्रति आस्था है। षहरों की आधुनिक सभ्यता को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

''उन्हें घर नहीं चाहिए
घर में अँधेरा होता है
अकेले व्यक्तियों का
वे घर की बजाय पेड़ चाहते हैं
जिस पर तरह–तरह की चिड़िया बैठेंगी
और उड़ जाएँगी
एक राषन कार्ड मेले में खोए हुए
किसी बच्चे का आर्त्तनाद होता है
वह उसका फोटो है जो कहीं गायब हो चुका है
उन्हें चाहिए जंगल में साथ–साथ चलता बच्चा
जो लोटने तक यह नहीं कहे कि भूख लगी है।''

इस प्रकार कवि महानगरीय सभ्यता की विसंगतियों पर प्रहार करता है। 'जंगल के दावेदार' कविता में गरीब,दरिद्रय आदिवासियों का कर्ज के नाम पर ष्षोषण किया जाता है। कवि कहते हैं–

''दया अथवा ममता से बदलती नहीं है दुनिया
दया अथवा आषीष से बदलते नहीं है दरिद्र लोग

वे खूब समझते हैं उसे जो भीख दे रहा है
वे जानते हैं उसे जो हाथ मिला रहा है और कर्ज उठा रहा है
वे सुन रहें हैं उनकी मुक्ति किधर से आ रही है।"

दूसरी ओर लीलाधर मंडलोई की कविता में सातपुड़ा की घाटियों के छिंदवाड़ा जिले के मूल आदिवासियों के जीवन–संघर्ष को दर्षाया गया है। इसमें गौंड़ और भारिया आदिवासी की स्थिति है। कवि कहते हैं–

"सातपुड़ा के कन्धे हैं मेरे पास
उसी पहाड़ से गुजर पैदल आये थे माँ–बाप
कोसों का फासला अपनी पिंडलियों के भरोसे फलाँगने।"

अनुज लुगुन भी आदिवासी की स्थिति पर प्रकाष डालते हुए अपनी चिंता जाहिर करते हैं–

"खेतों के आसमान के साथ
हमने चाहा कि जंगल बचा रहे
अपने कुल–गोत्र के साथ
पृथ्वी को हम पृथ्वी की तरह ही देखें
पेड़ की जगह पेड़ ही देखें
नदी की जगह नदी
समुद्र की जगह समुद्र और
पहाड़ की जगह पहाड़।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आदिवासी इस देष के मूल निवासी कहे जाते हैं लेकिन व्यवस्था से बाहर रहकर इन्होंने अपना जीवन बिताया है।

आज हम इक्कीसवीं सदी में भारत के प्रगतिषील होने की बात कर रहे हैं,लेकिन आदिवासी एवं पिछड़ी हुई जनजातियों के अधिकार एवं अस्मिता की पहचान पर प्रश्नचिन्ह निर्मित हो रहे हैं। वाम षलाके कवि ने ठीक ही कहा है–

"सच्चा आदिवासी
कटी पतंग की तरह भटक रहा है।
कहते हैं हमारा देष
इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहा है।"

निर्मला पुतुल की कविताएँ केवल पुरूषी मानसिकता का विरोध ही नहीं करतीं बल्कि स्वयं के अस्तित्व की तलाष करती हुई आदिवासी स्त्री व जाति के प्रत्येक क्षेत्र में किये जाने वाले ष्योषण को भी अभिव्यक्त करती हैं। वह पुरूष प्रधान समाज में घर,परिवार,प्रेम,रिष्ते–नाते सम्बन्धों में अपने स्थान को ढूँढती हैं। 'अपने घर की तलाष' कविता में वह कहती है–

''धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिए मैं
दौड़ती हॉफती–भागती
तलाष रही हूँ,सदियों से निरन्तर
अपनी जमीन,अपना घर
अपने होने का अर्थ।''

वहीं दूसरी ओर इन स्त्रियों पर चौतरफा षोषण का खतरा लगातार बना हुआ है,जहॉ इनका मुकाबला बाहरी षोषकों से तो है ही,अपने समाज के लोगों से भी लगातार खतरा बना हुआ है–

''हक की बात न करो मेरी बहन
मत मॉगों पिता की सम्पत्ति पर अधिकार
जिक्र मत करो पत्थरों और जंगलों की अवैध कटायी की
सूदखोरों और ग्रमीण डॉक्टरों के लूट की चर्चा न करो बहन
मिहिजाम के गोआकोला की 'सुबोधनी मराण्डी' की तरह तुम भी
अपने मगजहीन पति द्वारा
भरी पंचायत में डायन करार कर दण्डित की जाओगी।'' (कुद मत कहो सजोनी किस्कू)

भारत में आदिवासियों की संस्कृति सबसे पुरानी है। यह कहा जाता है कि आदिवासी तो वेदों से पहले भारत में मौजूद थे। यही बड़ी वजह है कि आदिवासी संस्कृति में ईष्वर या आत्मा नहीं, प्रकृति प्रमुख है, जिसके साथ मनुष्य जीता,पलता,बढ़ता है। और फिर खत्म हो जाता है। सहदेव सोरी की कविता 'वह आदमी' में यह रूप देखा जा सकता है–

''प्रकृति की गोद में बसा
वह आदमी काला मटमैला
बियाबान जंगलों में

पहाड़ की तराइयों में
सरिता की धाराओं में
तय कर रहा है
जीवन का सफर।"

समकालीन आदिवासी कविता में विस्थापन– विस्थापन जीवन में एक बड़ी त्रासदी की तरह है। प्रारंभ से ही औधोगिक विकास की आधुनिक प्रणाली और हिंसा के कारण समाज के सबसे कमजोर तबके,आदिवासी और अन्य वंचितों के साथ भारी सामाजिक अन्याय हो रहा है और उन्हें अपनी जमीन से कटना पड़ रहा है।

"जंगल उनका है
आदिवासी जंगल के सबसे निकट हैं
इसलिए जंगल उनका है
अब उनके बेदखल होने का समय है
यह वही समय है
जब आकाष से पहले
एक तारा बेदखल होगा
जब पेड़
पक्षी बेदखल
जब जंगल से आदिवासी बेदखल होंगे।"

–विनोद कुमार षुक्ल

आदिवासी समाज का वर्तमान– आदिवासी समाज का इतिहास काफी पुराना है। लगभग पॉच हजार वर्ष का इनका इतिहास है। भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया के किसी भी हिस्से में अगर हम खोजें तो पाएँगे कि आदिवासी समाज एकमात्र ऐसा मानव समूह है जो आज भी विकास और वैज्ञानिकता से अछूता और अनभिज्ञ रहकर अपनी वीरान दुनिया में सिमटा हुआ है। उसकी निर्जनता की यह पीड़ा भगवान गव्हाडे की कविता 'लक्ष्मण रेखा' में स्पष्ट है–

"कहा गया है हमें
पैर उतने ही पसारो

जितना तुम्हारा बिछौना
सिकुड़कर पैरों के साथ
सिकुड़ लिया है अपनी
सोच का दायरा
दायरे और कठघरे की
जिंदगी में सीख लिया है जीना
गुजर–बसर करना
अपनी औकात जानकर
नहीं की पार कभी हमने लक्ष्मण रेखा।"

आदिवासी समाज के सामने सबसे बड़ा कोई खतरा है तो वह है उनके पहचान के मिटने का। 21वीं सदी में उनकी पहचान मिटाने की साजिष योजनाबद्व तरीके से रची जा रही है। कहीं धर्म को हथियार बनाया जा रहा है तो कहीं विकास को। महादेव टोप्पो की कविता में एक आदिवासी सवाल के साथ खड़ा है। और 'मैं पूछता हूँ' कविता में पूछता है–

"संविधान की भाषा में हम
अनुसूचित जाति या
अनुसूचित जनजाति हैं
मनु की भाषा में षूद्र
कम्युनिस्टों की भाषा में षोषित
भाजपाइयों की भाषा में
पिछड़े हिंदू
मैं पूछता हूँ तुम सबसे
आखिर इस देष में
इस प्रजातंत्र में हम क्या हैं?"

हम सब जानते हैं कि भाषा के बिना हम गूंगे है। संस्कृति और भाषा के छीने जाने के कारण उनकी पहचान खुद–ब–खुद मिटने लगती है। महादेव टोप्पो की कविता 'त्रासदी' में यह स्थिति स्पष्टतः देखी जा सकती है–

"मगर वे तुम्हें मनुष्य नहीं कहेंगे
सबसे बड़ी त्रासदी तो यह कि
तुम्हें वनवासी आदिवासी गिरिजन

सब कुछ कह लेंगे
लेकिन कहेंगे नहीं
कभी तुम्हें इस देश का वासी।'

शोध प्रविधि एवं तकनीक– आदिवासी साहित्य के अध्ययन हेतु सूचना संग्रहण के लिए द्वितीयक स्त्रोत का माध्यम उपयोग किया गया है। वहीं आवष्यकतानुसार तृतीयक स्त्रोत का भी उपयोग किया गया है।

निष्कर्ष एवं विमर्श–आदिवासी कविता ने आदिवासी स्वर को आम आदमी तक पहुँचाया है। जिससे आदिवासी समाज पहले से कहीं अधिक षिक्षित और सबल हुआ है। यहीं कारण है कि अब आदिवासी जल,जंगल जमीन,भाषा और संस्कृति पर सरकार के नीति का पुरजोर विरोध करने लगे हैं। आदिवासियों में आई चेतना ने अधिकार चेतना को भी बल दिया है,जिससे आदिवासी आंतरिक उपनिवेषवादी मानसिकता तथा घुसपैठ को आदिवासियों के षोषण का दोषी मानने लगे हैं,फलस्वरूप आदिवासियों क्षेत्रों में पांचवीं व छठवीं अनुसूची लागू करने की लगातार मॉग सरकार से की जा रही है। आदिवासी संस्कृति एवं समाज के संरक्षण हेतु 9 अगस्त विष्व आदिवासी दिवस को स्थानीय/सामान्य अवकाष,जनगणना में आदिवासी धर्म का अलग प्रावधान,पेसा कानून का कियान्वयन और आदिवासी इतिहास के संरक्षण हेतु सर्व आदिवासी समाज एकजुट होने लगे हैं। आदिवासी समाज में भी गोंडवाना सत्ता,गोंडवाना दर्षन,कंवरान दर्षन जैसे पत्रिकाओं का संपादन होने लगा है, जिससे आदिवासी समाज आदिवासी साहित्य के प्रति जागरूक होने लगा है। तभी तो प्रत्येक आदिवासी सभा व कार्यक्रम में आदिवासी भाई–बहनों को एक ही नारा से संबोधित किया जाकर एकजुट होने का संदेष दिया जाता है–

"एक तीर एक कमान, सब आदिवासी एक समान।"

आदिवासियों के बारे में सबसे दुखद पहलू यह है कि न कभी नियमानुसार इनकी जनगणना हुई है न इनके लिए चुनाव कार्ड है, न आधार कार्ड। कभी जनगणना हुई तो सब अंदाज से ऑकड़े डालकर जनगणना के ग्राफ बनाये गये हैं। अर्थात इनकी दुनिया

को पहचान ही नहीं है। सरकार को भी इससे लेना–देना नहीं है। जंगल,पर्वत के बीच सरकारी लोग पहुँचते ही नहीं। अगर पहुँच भी गये तो किसी एक को पकड़कर सारी जानकारी ली जाती है। यही अनकी पहचान बनायी जाती है। प्रसिद्व चिंतक श्री अत्तम कांबले इस बारे में लिखते हैं कि "विष्वग्राम जब तैयार करने जा रहे हैं तब इस पर भी सोचना होगा कि ये जनजातियॉ कैसे जी रही हैं और भविष्य में जी सकेंगी या नहीं? ये जनजातियॉ और उनसे संबंधित मनुष्य क्यों खत्म होते जा रहे हैं और उनके लिए जिम्मेदार कौन है? यहॉ की व्यवस्था? सरकार? संस्कृति? जीने की स्पर्धा या भूमण्डलीकरण?

कुल मिलाकर षासन एवं अन्य समाज को भी इस दिषा में पहल कर आदिवासी एवं भूमण्डलीकरण की आवष्यकता को समझकर कल्याणकारी नीति बनाना होगा व कियान्वयन भी कराना होगा।

"करें कोई तरकीब ऐसी कि सब सॅभलते रहें,
हवाऍं भी चलती रहें और दिये भी जलते रहें।"

सन्दर्भ सूची –

1. जायसवाल संजय (2017): समकालीन हिन्दी आदिवासी कविता में सामाजिक चेतना, प्रथम संस्करण, आनंद प्रकाषन कोलकाता,भाग–1,पृष्ठ कमांक–17,51–56,66–68,84–87

2. सोनटक्के,माधव एवं संजय राठोड (2017): भारतीय साहित्य और आदिवासी–विमर्ष, प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाषन पटना, पृष्ठ कमांक–15,34,36,37–38,39–40,41–42,43–45,71,84–85

3. गुप्ता,रमणिका (2015): आदिवासी अस्मिता का संकट,दूसरा संस्करण,सामयिक प्रकाषन,नई दिल्ली,पृष्ठ कमांक 36,46–48,60–62

4. अनुषब्द,चारू गोयल (2017): लोक और शास्त्र जनजातिय साहित्य,प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाषन,नई दिल्ली,पृष्ठ कमांक 23,50

5. गुप्त, रमणिका (2017): आदिवासी स्वर और नयी षताब्दी,प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाषन,नई दिल्ली,पृष्ठ कमांक 5,73,101

6. मीण, हरि राम (2016): आदिवासी लोक की यात्राएँ, प्रथम संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली,पृष्ठ क्रमांक 7–8
7.अलंग संजय (2016): छत्तीसगढ़ की जनजातियॉ,द्वितीय सॅस्करण, अनामिका प्रकाषन,इलाहाबाद,पृष्ठ क्रमांक 38

*सहायक प्राध्यापक, शासकीय राजमाता विजया राजे सिंधिया कन्या महाविद्यालय कवर्धा, जिला–कबीरधाम (छग.) 491995
email : lawansingh179@gmail.com,mob.9926819179